IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

गाँधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम और महिलाएँ

डॉ॰ सोनी कुमारी

अतिथि प्राध्यापिका, इतिहास विभाग

डॉ॰ एस॰ के॰ एस॰ महिला महाविद्यालय, मोतिहारी, पूर्वी चम्पारण, बिहार, भारत

पता– भवदेपुर, वार्ड नं॰– 12, पोस्ट– भवदेपुर गोट, थाना– रीगा, जिला– सीतामढ़ी, बिहार, पिन कोड– 843302

नये आर्थिक पर्यावरण के उद्‌भव, नई राजनीतिक व्यवस्था की स्थापना, आधुनिक पाश्चात्य शिक्षा पद्धति और चिंतन शैलियों के प्रसार आदि के फलस्वरूप भारत में साधारण राष्टीय और प्रजातांत्रिक जागरण हुआ। उसी की एक अभिव्यक्ति यह भी थी कि जिस मध्ययुगीन सामाजिक अधीनस्थता और प्रपीड़न से भारतीय नारी सदियों से त्रस्त थी, उससे उसकी मुक्ति के आंदोलन शुरू हुए।

प्राक्–ब्रिटिश भारत में, संभवतः वैदिक युग के शुरू के काल को छोड़कर, हरदम नारी पुरूष की अधीनता में रहती आई थी। धर्म और विधि वंचित थीं। स्त्री और पुरूष के निजी और सामाजिक चारण की अच्छाई–बुराई के मानदंड भिन्न थे।

प्रागैतिहासिक कबीलाई समाज को छोड़कर सभी प्राचीन और मध्ययुगीन समाजों की तरह भारत में भी, अंग्रेजों की विजय के पूर्व, स्त्री पुरूषों के अधीन थी। अंग्रेजों के आगमन पर जब भारत में नए अर्थतंत्र और नई विधि व्यवस्था की स्थापना हुई और जब भारत पश्चिम के देशों की आधुनिक प्रजातांत्रिक विचार शैली के संपर्क में आया, तो स्थिति अवश्य कुछ बदली।

अतीत में भी बौद्ध धर्म जैसे सुधार के आन्दोलनों ने स्त्री की स्थिति में सुधार लाने के कुछ प्रयास किये थे। लेकिन स्त्री के प्रति सदियों से जो सामाजिक और कानूनी अन्याय होते रहे थे। उनके निवारण के लिए जोरदार आंदोलन अंग्रेजी शासन काल में ही चल सके।

यह सही है कि भारतीय इतिहास में, चाँद बीबी, नूरजहाँ, रजिया बेगम, झाँसी की रानी, मीराबाई, और अहिल्या बाई जैसी औरतें हो चुकी हैं, जिन्होंने साहित्य, कला, दर्शन, प्रशासन और यहाँ तक कि रणकौशल के क्षेत्र में भी चमत्कार किए। लेकिन ये औरतें समाज की शासक, अधिकार प्राप्त श्रेणियों की उपज थी और इसलिए सामाजिक आधीनस्थता की उस स्थिति से मुक्त थीं, जिसमें अधिकांश भारतीय औरतें रहती थी और जहाँ उन्हें आत्माभिव्यक्ति के लिए न तो स्वतंत्रता थी और न उपयुक्त अवसर।

अंग्रेजों की भारत विजय ने भारत का सम्पूर्ण सामाजिक परिवेश बदल दिया। इससे ऐसे वस्तुनिष्ठ एवं भावनिष्ठ तथ्यों का जन्म हुआ जिन्होंने लोगों में प्रजातांत्रिक भावनाओं का उदय कराया। सामाजिक अस्तित्व की स्थिति में जो समाज सुधार आन्दोलन उद्‌भूत हुए, उनका एक लक्ष्य यह था कि भारतीय नारी जिन सामाजिक और न्यायिक विषमताओं एवं अनीतियों की शिकार है, उन्हें दूर किया जाए।

प्राक् ब्रिटिश भारतीय नारी की दासता उन दिनों की सामाजिक, आर्थिक संरचना में निहित थी। उस वक्त समाज में व्यक्ति की स्थिति उसके जन्म द्वारा निर्धारित होती थी और नारी की सारी अशक्तता का मूल यह था कि उसका जन्म ही नारी के रूप में हुआ था। धार्मिक विधान स्त्रियों की निकृष्ट स्थिति को पवित्र भी बना रहे थे। भारत में अँग्रेजों ने पूँजीवादी अर्थव्यवस्था और नई सामाजिक वैधानिक संरचना कायम की, वह व्यक्ति की समानता और स्वतंत्रता पर आधारित थीं। इनमें जन्म, यानी जाति, संप्रदायमूलक विषमताओं के लिए जगह नहीं थी। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में इन सिद्धान्तों की मान्यता के लिए संघर्ष करने पड़े। अंग्रेजी सरकार की झिझक और समाज के पोंगापंथियों के प्रतियित्मक प्रतिरोध को कुछ हद तक खत्म करने के बाद ही नागरिक अधिकारों के क्षेत्र में स्त्री–पुरूष को अधिकाधिक बराबरी का दर्जा दे सकने वाले कानून बन सके।

स्त्रियों को दबाकर रखने वाले कानूनों और रीतिरिवाजों को खत्म करने के प्रारंभिक प्रयास पुरूष जाति के ही प्रबुद्ध सदस्यों ने किए। लेकिन जो इन अनीतियों की शिकार थीं, वे भी कालम से स्वयं उद्‌बुद्ध हुई और उन्होंने अपने नेतृत्व में अपनी मुक्ति के आन्दोलन चलाए। उन्होंनें अपने संगठन बनाए और अपनी आवश्यकताओं के विरूद्ध संघर्ष के लिए मोर्चाबंदी की। उनके सामाजिक राजनीतिक और शैक्षिक उत्थान के लिए काम करने वाले संगठनों में 1927 में स्थापित 'आल, इंडिया वीमंस कांफ्रेंस' सबसे आगे था।'[1] भारतीय औरतों की अशक्तता का उन्मूलन और विभिन्न प्रकारों के उत्पीड़न से मुक्ति की प्रयिा काफी लंबी थी। पुराणपंथी भारत और पुरानी सामाजिक और मनोवैज्ञानिक विचारधाराएँ इसके विरूद्ध थीं। फिर भी, इस दिशा में लगातार प्रगति होती रही और अनेक विशिष्ट सफलताएँ भी प्राप्त हुई। एक जमाने में भारतीय नारी सती और बालहत्या जैसी बर्बर, प्रथाओं की शिकार थी। पति के मरने पर विधवा को पति की लाश के साथ चिता पर मरना होता था। गरीब माँ–बाप के लिए लड़की की शादी काफी मँहगी थी, इसलिए माँ–बाप प्रायः बच्चियों की हत्या कर देते थे। सती प्रथा के उन्मुलन के बाद भी विधवाओं को पुनः विवाह की सुविधा नहीं मिली। पर्दा–प्रथा और मंदिरों में वेश्यावृत्ति जैसी बुराइयाँ भी प्रचलित थी। मुसलमानों में ही नहीं, हिन्दुओं के कुछ वर्गों में भी पर्दा जैसी घातक और हानिकारक प्रथा प्रचलित थी। 'औरतें मानों जिन्दगी भर के लिए कैद में डाल दी गई हों। उसकी स्वभावतः तीव्र ज्ञानेंद्रियाँ निष्यिता के कारण सुस्त पड़ जाती हैं, उन तक ज्ञान का प्रकाश नहीं पहुँच पाता, और वे अज्ञान एवं पूर्वाग्रह में पड़ी रहती है, अंधेरे में रास्ता टटोलतीं, समाज के रीति रिवाज के नाम पर उत्सर्ग'।[2]

प्रचारात्मक कार्य द्वारा राजा राम मोहन राय जैसे समाजसुधारकों ने सती प्रथा को समाप्त करने का प्रयास किया और अंत में लार्ड बेंटिक ने इसे समाप्त कर दिया। बाद में बालहत्या को भी अपराध करार दिया गया।

लोगों में शिक्षा एवं उदारवादी और बुद्धिवादी विचारों के प्रसारण से पर्दा–प्रथा भी मिटने लगी। भोपाल की बेगमों जैसी उच्चकुलीन औरतों ने इस दिशा में मार्ग प्रदर्शन किया। औरतों के आन्दोलनों में इस बात पर जोर दिया गया कि पर्दा का सामाजिक प्रगति एवं शरीर और मन पर बुरा प्रभाव पड़ता है। 'सामाजिक जीवन के उत्थान में अगर औरतों की अपनी भूमिका अदा करनी है, अगर उनके लिए यह जानना जरूरी है कि किन कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों के लिए उनके लड़ाकों को प्रशिक्षित होना है, तो पर्दा प्रथा खत्म होनी चाहिए।'[3]

बाल विवाह भी हिन्दू समाज की एक प्रमुख बुराई थी और इससे पुरूषों की अपेक्षा स्त्रियों को अधिक नुकसान था। ईश्वरचंद्र विद्यासागर के फलस्वरूप 1856 का विडो रिमैरेज ऐक्ट एल0एस0एस0 ओमेली द्वारा उद्‌धृत विधता–विवाह कानून, पास हुआ। जिसके अनुसार 'विवाहित और अविवाहित लड़कियों के लिए सहमति की उम्र बढ़ाकर दस वर्ष कर दी गयी। भारतीय सुधारकों के प्रयत्न से 1872 में नेटिव ऐक्ट पास हुआ जिसमें विवाह के लिए लड़कियों की सहमति को आवश्यक बताया गया।'[4] बंगाल में ईश्वचन्द्र विद्यासागर तथा बंबई में श्री भालावारी, जस्टिस रानाडे और के0 नटराज जैसे समाज सुधारकों ने विधवा विवाह के अधिकार का जमकर समर्थन किया। समाज सुधार के सभी संगठनों ने अपने कार्यम में विधवा के विवाह को प्रमुख स्थान दिया, लेकिन यह आन्दोलन बहुत प्रगति नहीं कर सका क्योंकि जनमत बुरी तरह विधवा विवाह के विरूद्ध था। कानूनी रूकावटों के समाप्त के हो जाने पर भी, पुरानी चिंतन शैली में अंतर नहीं आया। 'मंदिरों में वेश्यावृि

की प्रथा भारत के कुछ भागों में देवदासी प्रथा के रूप में प्रचलित थी।'[5] डॉ0 मुथुलक्ष्मी रेड्डी और अन्य सुधारकों के सतत् के प्रयत्न फलस्वरूप 1925 में एक ऐक्ट पारित हुआ और दंड संहिता की कुछ धाराएँ जिनके अनुसार 'नाबालिक लड़कियाँ का अवैध अनैतिक व्यापार दंडनीय है, देवदासियों पर भी लागू हुई।'[6] कुछ अपवादों को छोड़कर प्राक् ब्रिटिश में स्त्रियों को प्रायः शिक्षा नहीं मिलती थी। मध्ययुगीन विचार प्रणाली में स्त्रियों को केवल गृहकार्य की जिम्मेदारी दी गई थी। लड़कों के लिए गाँवों और शहरों में स्कूल होते थे, लेकिन स्त्रियों के लिए कहीं शिक्षा का प्रबंध नहीं था।

यह प्रायः सबने स्वीकार किया कि स्त्री को शिक्षा और संस्कृति का समान अधिकार है। स्त्रियों में तेजी से शिक्षा का प्रसार हुआ। लड़कियों का शिक्षा के प्रति जो रूढ़िगत विरोध था, वह खत्म होने लगा। एक समय था जब भारत में स्त्री शिक्षा के समर्थक तो नहीं थे, अलबा उसके विरोधी और शत्रु थे। अब तक स्त्री जाति कई मंजिलों से गुजर चुकी है, पूरी उदासीनता, उपहास, आलोचना और स्वीकृति। अब आसानी से कहा जा सकता है कि 'भारत में सर्वदा स्त्रियों की शिक्षा को भी उतना ही आवश्यक समझा जा रहा है जितना लड़कों की शिक्षा को, इसे राष्टीय प्रगति की आवश्यक शर्त माना जा रहा है।'[7] ब्रहम समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन आदि सुधार संगठनों, डैनिश, अमरीकी, जर्मनी और ब्रिटिश मिशनरी संस्थाओं और अल्पसंख्यक परन्तु प्रगतिशील पासी संप्रदाय ने स्त्री शिक्षा की दिशा में पथ प्रदर्शन का काम किया। प्रो0 कार्वे के द्वारा '1916 में स्थापित इंडियन वीमंस यूनिवर्सिटी ने स्त्रियों को शिक्षा प्रदान करने के सिलसिले में बड़ा काम किया।'[8]

मुसलमानों में स्त्री शिक्ष का प्रसाद काफी सुस्त था। यद्यपि पिछली ही सदी के अंत में सर सैयद अहमद खाँ अन्य नेताओं ने इसकी खुलकर हिमायत करनी शुरू की थी। फिर भी इस दिशा में लगातार तरक्की होती रही। स्त्री शिक्षा में लगातार होती हुई प्रगति का इसी बात से अंदाज हो जाता है कि '1917 में स्कूल जाने वाली लड़कियों की संख्या 1,230. 000 थी और 1937 में यह संख्या बढ़कर 2,890,000 हो गई।'[9]

भारतीय आबादी में अधिकांश लोग बहुत गरीब थे और स्त्री शिक्षा के तीव्र विकास के रास्ते में यह तथ्य एक बहुत बड़ा अवरोध था। गरीबी के कारण भारतीय जनता के कर्मकार वर्ग, किसान और मजदूर, स्त्री शिक्षा की जो भी सुविधाएँ प्राप्त थी उनका फायदा नहीं उठा सके। वे इसका खर्च नहीं उठा सकते थे, इसलिए शिक्षा उन तक नहीं पहुँच सकी। भारतीय राष्ट्रवादियों के अनुसार भारतीय जनता की गरीबी का कारण यह था कि जिस तरह की आर्थिक प्रगति से उनका आर्थिक स्तरँचा होता, उस तरह की प्रगति के रास्ते में विदेशी शासन बाधक था। भारतीय जनता में शिक्षा के सार्वजनीक विकास का प्रश्न उनकी राजनीतिक प्रगति के प्रश्न से जुड़ा हुआ था।

राजनीति में स्त्रिों का तीव्र प्रवेश, खासकर 1919 के बाद, भारतीय इतिहास की अत्यंत आश्चर्यजनक घटना है। प्राक् ब्रिटिश भारत में सुलताना रजिया बेगम, चाँद बीबी, नूरजहाँ, अहिल्याबाई होलकर, जैसी कुछ स्त्रियों के अतिरिक्त अन्य स्त्रियों ने राजनीति में भाग नहीं लिया। ब्रिटिश शासन काल में स्थिति बदली। उन्हें तो मताधिकार मिला था, सीमित ही सही, उसका उन्होंने जोशखरोश के साथ इस्तेमाल किया, साथ ही उन्होंने भारतीय राष्टीय काँग्रेस द्वारा चलाए गए जन आन्दोलनों में भी भाग लिया। महात्मा गाँधी और काँग्रेस राष्टीय प्रयास के लिए उनका आवान कर रहे थे और उन्होंने देखा कि 'इस भविष्यद्रष्टा गाँधी और ब्रिटिश सरकार की सर्वापरिसा ने उनके हाथों में एक कारगर हथियार दे रखा है। एक हाथ से उन्होंने निष्यि विरोध (सत्याग्रह) का हथियार और दूसरे हाथ से मतदान का अधिकार ग्रहण किया।'[10]

बम्बई की महिला–कल्याण–संस्था भगिनी–समाज का वार्षिक सम्मेलन 20 फरवरी, 1918 में गाँधी जी की अध्यक्षता में हुआ था। उस समय वह संस्था बहुत कुछ भाई करसन दास के उत्साह से चल रही थी। गाँधी जी ने इस समय कहा था, 'मैं उस समय को आया देखना चाहता हूँ कि जब आप बहनों में से कोई भाई चितलिया का स्थान ग्रहण कर लेंगी जब हम इस संस्था से हटकर अन्य कार्यों के लिए मुक्त हो सकेगें। जिसने स्त्री सेवा को ही अपना धर्म मान लिया है वह तो इस दिशा में दूसरा कार्य भी ढूँढ़ लेंगे, किन्तु इस संस्था का सच्चा स्वरूप, तो तभी प्रकट होगा जब यह संस्था अपने अधिकारियों का चुनाव स्त्री वर्ग में से करेगी और जब उसका कार्य जितना अच्छा इस समय है उससे भी अधिक अच्छा

होगा। मैं स्त्रियों और पुरूषों दोनों के निकट सम्पर्क में रहता हूँ। और यह मेरी समझ में आ गया है कि स्त्रियों की सेवा के कार्य में जब तक स्त्रियाँ न आये तब तक मै उस कार्य को नहीं चला सकता।'[11]

गाँधी जी ने पुनः कहा, 'जब तक भारत में स्त्रियाँ तनिक भी दबी रहेंगी अथवा उन्हें पुरूषों की अपेक्षा कम अधिकार प्राप्त होंगे, तब तक भारत का सच्चा उद्धार न होगा। इसीलिए यदि यह संस्था इस प्रकार से अपने उद्देश्य को पूरा कर सकेगी तो उससे भारत के गौरव में वृद्धि होगी।'[12]

भारत में सर्वत्र यात्रा करते समय गाँधी जी ने देखा था कि इस सम्बंध मे जो आन्दोलन चल रहा था वह अनन्त आकाश में एक छोटे से बादल की तरह बहुत थोड़े लोगों तक ही सीमित था। करोड़ों लोगों को इस आन्दोलन का कोई ध्यान नहीं था। पिचासी प्रतिशत लोग इन गतिविधियों से अलिप्त रहकर जीवन बिता रहे थे।

गाँधी जी ने कहा कि 'यदि समाज की बहनें इन पिचासी प्रतिशत लोगों के जीवन का भली–भाँति अध्ययन करें तो, वे समाज के कार्यम की रूप रेखा बहुत अच्छी तरह से बना सकेंगी। अब तक कानून निर्माण का कार्य प्रायः पुरूषों के हाथों में रहा है और पुरूषों ने सदा विवेक का उपयोग नहीं किया है। स्मृतिकारों ने स्त्रियों के संबंध में जो कुछ लिखा है, उसका सर्वथा समर्थन नहीं किया जा सकता। इनके वचन ही बाल–विवाह और विधवाओं पर लगाये गये नियंत्रण आदि के मूल में है।'[13]

उस युग में जिन हिन्दुओं न उनकी पूजा की थी वे आज इन आधुनिक सती–साध्वियों की भी करेंगे। हिन्दू उनके वचनों को शास्त्र–वचनों के समान प्रमाण मानकर ग्रहण कर लेंगे। 'स्मृति आदि शास्त्रों में जो आक्षेप हैं उन्हें विस्मृत कर देंगे। हिन्दू धर्म में ऐसे परिवर्तन सदा ही होते–आते हैं और रहेंगे। इसीलिए तो यह धर्म अन्त तक जीवित है और भविष्य में भी जीवित रहेगा। गाँधी जी ईश्वर से प्रार्थना थी कि यह संस्था शीघ्र ही ऐसी नारियों को उत्पन्न करे।'[14]

गाँधी जी ने अपने देश की नारियों की अवनति के उन कारणों पर विचार किया जिनको साधना बनाकर उनकी उन्नति की जा सकती है। परन्तु इस ध्येय को साध सकने वाली स्त्रियाँ तो इनी–गिनी ही हो सकेंगी। उन्होंने सामान्य स्त्रियों के लिए कर्तव्य निश्चित किया। प्रथम कार्य था यथासंभव अधिक से अधिक स्त्रियों को उनकी दुरावस्था का ज्ञान कराया जाय। यह कार्य सामान्य शिक्षा के बिना सम्पन्न नहीं हो सकता है। यदि ऐसा माना जाय तो इस कार्य की सिद्धि के लिए लम्बा समय चाहिए। उन्हें उनकी दुरावस्था का ज्ञान अभी सामान्य शिक्षा की प्रतीक्षा किये बिना ही कराया जा सकता है। गाँधी जी बिहार के एक जिला की उच्च कुलों की बहुत सी बहनों से मिले। वे सभी पर्दानशीन थी। उनलोगों ने गाँधी जी के सम्मुख आकर, जैसे बहन भाई से पर्दा नहीं करती, वैसे ही पर्दा हटा दिया। ये बहनें पढ़ी–लिखी नहीं थी। उनसे मिलने से पहले एक अंग्रेज बहन उनसे मिलकर गई थी। हिन्दू बहनों से मिलने के लिए गाँधी जी को कमरे में जाना पड़ा। गाँधी जी ने उनसे विनोद में कहा कि चलो, हम सब वहीं चलकर बैठे जहाँ सब पुरूष बैठे हैं। उनलोगों ने उत्साहपूर्वक कहा– 'हम तो इसमें बहुत प्रसन्न हैं, किन्तु हमारी प्रथा के अनुसार हमें अनुमति दी जानी चाहिए। हमें यह पर्दा तनिक भी नहीं रूपता, इसे आप हटवा दें।'[15]

इन बहनों को सामान्य शिक्षा के पूर्व ही अपनी स्थिति का ज्ञान हो गया था। गाँधी जी से इन बहनों ने सहायता माँगी, किन्तु गाँधी जी चाहते हैं कि उनकी मुक्ति की शक्ति स्वयं उनमें ही हो और उन्होंने स्वीकार भी कर लिया कि यह शक्ति उनमें है। साधारणतः अनपढ़ मानी जाने वाली ये बहनें चम्पारण में अच्छा काम कर रही थीं। वे जिस स्वतंत्रता का उपभोग कर रही थीं, उस कारण ज्ञान वे अपनी बहनों को भी दे रही थी। 'स्त्री–पुरूष की सहचारिणी है। उसकी मानसिक शक्ति पुरूष के समान ही है और उन्हें पुरूष की छोटी से छोटी प्रवृति में भाग लेने का अधिकार है। जितनी स्वतंत्रता पुरूष को है, उतनी स्वतंत्रता भोगने की अधिकारिणी वे भी हैं। और जैसे पुरूष अपने क्षेत्र में सर्वोपरि है वैसे ही स्त्रियाँ भी अपनी क्षेत्र में सर्वोपरि है। यह स्थिति स्वाभाविक होनी चाहिए।'[16]

गाँधी जी ने अपने विचार शिक्षा प्रणाली के सम्बंध में भी दिये। पढ़ने लिखने से बुद्धि विकसित होती है, तीव्र होती है एवं परोपकार करने की क्षमता बहुत बढ़ जाती है। वे समय–समय पर यह बताते रहते थे कि पुरूषों का स्त्रियों से उनके

स्वाभाविक, मानवीय अधिकार छीन लेने अथवा उन्हें प्रदान न करने का कारण स्त्रियों में विद्या का अभाव नहीं होना चाहिए, किन्तु निश्चिय ही इन स्वाभाविक अधिकारों को कायम रखने उनमें वृद्धि करने के लिए विद्या की आवश्यकता है। विद्या के बिना लाखों लोगों को तो शुद्ध आत्मज्ञान भी प्राप्त नहीं हो सकता। विद्या के बिना मनुष्य पशु वह हैं, यह अतिशयोक्ति नहीं यथार्थ है। इसलिए पुरूषों की भांति स्त्रियों के लिए भी शिक्षा प्राप्त करना आवश्यक है। स्त्री और पुरूष का दर्जा समान है। दोनों की जोड़ी अपूर्व है, दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। इसलिए गृह व्यवस्था और बालकों की शिक्षा–दीक्षा आदि विषयों का विशेष ज्ञान उसके लिए आवश्यक है। गाँधी जी का यह ख्याल नहीं था कि 'किसी के लिए कोई–विशेष ज्ञान प्राप्त करने का निषेध रहे, बल्कि यह कि शिक्षा–म इन मुद्दों को ध्यान में रखकर तैयार किया जाय। ताकि दोनों ही वर्गों को अपने–अपने क्षेत्रों में पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने का अवसर मिले।'[17]

शिक्षा प्राप्ति के उपरान्त स्त्रियों के व्यक्तिव का विकास होना शुरू हो जायगा। वे उचित–अनुचित के सम्बंध में अपनी बहुमूल्य राय अपने परिवार को, समाज को तथा राष्ट को देने में समर्थ होंगी। वे अपने पर हो रहे अत्याचारों के विरूद्ध आवाज बुलंद कर सकती हैं। इस पुरूष–प्रधान–समाज में पुरूषें द्वारा अपनी उपेक्षा की ओर समाज देश का ध्यान केन्द्रित कर सकती है। अपने स्वाभाविक अंधकार को प्राप्त कर समाज को एक नया रूप दे सकती हैं। उनके व्यक्वि के विकास में ही समाज तथा राष्ट का विकास निहित है। बालिका यदि शिक्षित है तो वह अपने पर अनुचित सामाजिक दबाव को बर्दाश्त नहीं करेगी। यदि माँ अशिक्षित है, तो वह अपनी बालिकाओं को उचित समय तक शिक्षा दिलाने में सहयोग नहीं कर पाती। जो पुरूष बालिका के साथ विवाह करता है वह परोपकार भावना से नहीं बल्कि बहुत कुछ वासना के वशीभूत होकर करता है। इन बालिकाओं की रक्षा कौन करे? इसका उार कठिन किन्तु एक ही है। पुरूश के अतिरिक्त इनका सांसारिक रक्षक कोई अन्य नहीं है। बालिका से विवाह करने वाले पुरूष को, उसकी पत्नी ही समझा सके, यह लगभग असंभव है। इसलिए यह अति सुधार कार्य समझदार पुरूष को करना है। गाँधी जी का कहना था कि 'यदि इनमें इतनी शक्ति हो तो, वे इन बालिका वधुओं की एक सूची बनावें, उनके पतियों के मित्रों को खोजें और उनके मार्फत एवं जो भी अन्य धर्मानुकूल एवं विनययुक्त कदम उन्हें सूझे, उन्हें उठाकर ऐसे पतियों को वे संदेश भेजें–

'आपने अज्ञानवश एक बालिका से विवाह करने का पाप किया है। जब तक इस बालिका की अवस्था परिपक्व नहीं हो जाती और जब तक यह शिक्षा प्राप्त नहीं कर लेती तब तक आप शुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन करके इसे स्वयं शिक्षा देकर अन्य किसी के मार्फत शिक्षा दिलाकर संतान उत्पन्न करने और उसका पालन–पोषण करने योग्य नहीं बना लेते, तब तक आप इस पाप से मुक्त नहीं हो सकेंगे।'[18]

गाँधी जी का आदेश था कि भगिनी–समाज यह निश्चित करे कि वे कौन–से कार्य अपने हाथ में लेंगी। उनका यह कार्य–क्षेत्र इतना विस्तृत है कि यदि संकल्पपूर्वक कार्य किया जाय तो बड़ा आन्दोलन इसके सम्मुख कुछ भी न रहे। एवं स्वराज्य शब्द का उच्चारण किये बिना ही उस दिशा में बहुत बड़ी सेवा हो जायगी। जब छापाखाने नहीं थे और भाषण की सुविधा भी कम थी, जब चौबीस घंटे में एक हजार मील के बजाय लोग केवल 24 मील की ही यात्रा कर सकते थे, तब अपने विचारों के प्रचार का एक ही मुख्य साधन होता था। वह था हमारा कर्म, और उसका प्रभाव बहुत होता था। अब हम वायु के वेग से दौड़ रहे हैं और लेख लिख रहे हैं। उसके बावजूद हम अपने विचारों पर अमल करवाने में लगभग असमर्थ रहे हैं। हर ओर से निराशा की ध्वनि सुनाई देती है। गाँधी जी का विचार था कि 'आज भी पहले की भाँति अपने कर्म से लोगों को इतना प्रभावित कर सकते हैं जितना अपने भाषणों और लेखों से कभी नहीं कर सकते। इस समाज से गाँधी जी की यही प्रार्थना थी कि वह ऐसे मौन कर्म को ही प्रधानता दे।'[19]

शिक्षित स्त्रियाँ अशिक्षितों के साथ सम्पर्क स्थापित नहीं करती और प्रायः ऐसे सम्पर्क को बढ़ावा नहीं देती। इस रोग का उपचार करना चाहिए। शिक्षित स्त्रियों को अपने सहज कर्तव्य का ज्ञान कराने की आवश्यकता है। इन दोषों से पुरूष वर्ग भी मुक्त नहीं है, लेकिन स्त्रियों को पुरूषों के पीछे–पीछे चलने की जरूरत नहीं। स्त्रियों में नवीन भावनाओं के सृजन की तथा उसे व्यवहार में लाने की जो शक्ति विद्यमान हैं पुरूषों में नहीं है। पुरूष अपेक्षाकृत अविचारी, उतावला और सदैव

नवीनता की खोज में लगा रहने वाला होता है। स्त्री गम्भीर, धैर्यवान और अधिकतर पुरानी वस्तुओं से चिपककर रहने वाली होती है। अतएव गाँधी जी की यह मान्यता थी कि यदि शिक्षित स्त्रियाँ पुरूषों की नकल करना छोड़ दें और स्त्रियों सम्बंधी महान प्रश्नों पर स्वतन्त्र रूप से विचार करें तो हम अनेक उलझनों को आसानी से सुलझा सकते हैं।[20]

गाँधी जी ने विधवाओं की समस्या पर भी अपने विचार व्यक्त किया 'विधवा अपनी इच्छानुसार पुनर्विवाह करें, इसकी बजाय स्त्रियाँ विधुर पुरूष से स्वयं अथवा अपनी लड़की का पाणिग्रहण संस्कार न करने तथा पालने में झेलने लायक बाल–वर को अपनी बेटी देकर उसकी आहुति न देने का दृढ़ निश्चय करें। गाँधी जी को पूरा विश्वास था कि भारत के लिए इसका परिणाम मधुर होगा। छोटी–बड़ी सैंकड़ों विधवाओं का उपयोग देश के निमिा कैसे हो यह प्रश्न बहुत विचार करने योग्य है तथा इस पर शिक्षित स्त्रियाँ गंभीरता से विचार करें। अनेक वर्षों से गाँधी जी के मन में यह विचार था कि थोड़े ही समय पहले हमारी स्त्रियाँ सूत कातने और बुनने का भी काम करती थी। इस धंधे की अवनति से हिन्दुस्तान को नुकसान पहुँचा है। विधवाएँ अभी मन्दिरों मे अथवा कथित साधु–रांतों की सेवा में अथवा गप्पें हाकने में अपना समय गंवाती हैं। मंदिर जाने में ही धर्म है, गाँधी जी ऐसा नहीं मानते थे। उसी प्रकार जिन साधु–संतो को किसी प्रकार की सेवा की आवश्यकता नहीं हैं उनके पास बैठे रहने से दोनों की ही हानि है। ऐसी प्रवृियों से विधवाओं को हटाकर हिन्दुस्तान का उपकार करने की परमार्थिक प्रवृति में उन्हें फिर लगना ही उनका शुद्ध पुनर्विवाह है। ऐसे काम करने को इच्छुक स्त्रियों को पहले तो स्वयं उद्योग की पाठशाला में पहला पाठ पढ़ना होगा, सूल कातना होगा तथा खड्डियों पर कपड़ा बुनना होगा।

कंचललाल खण्डवाला ने विधवाओं की समस्या पर कुछ सुझाव दिये। उनके विचार से विधवा विवाह होना चाहिए तथा विधुर पुरूषों को पूनर्विवाह नहीं करना चाहिए। इसके अलावा निम्नलिखित कार्यम आवश्यक है–

1. बाल–विवाह बंद करना।
2. जब तक वर–कन्या के विवाह करने की ठीक उम्र नहीं हो जाती तब जक कदापि विवाह न करना।
3. जो स्त्री अपने पति के साथ बिलकुल नहीं रह पायी है उसे विवाह करने की छूट देना। इतना ही नहीं, उसे विवाह करने के लिए प्रोत्साहित करना। ऐसी स्त्रियों को विधवा नहीं माना जाना चाहिए।
4. जो पंद्रह वर्ष की अवस्था में विधवा हो गयी और जो अभी युवा है, ऐसी विधवा को पुनः विवाह की छूट देना।
5. विधवाओं को अपशकुन का सूचक न मानकर उसे पवित्र मानकर सम्मान देना।
6. विधवाओं के लिए शिक्षण और धंधे का सुन्दर प्रबंध करना। इन सुधारों द्वारा हिन्दू–समाज विधवा के अभिशाप से मुक्त हो जायगा।'[21]

1920–22 के असहयोग–आंदोलन के समय स्त्रियों ने गाँधी जी से पूछा 'हम असहयोग में क्या मदद कर सकते है? शांति निकेतन में रहने वाली बहनों में अत्यंत गम्भीरता से उपर्युक्त प्रश्न किया था। गाँधी जी ने शांतिनिकेतन की बहनों का यह उार दिया कि, जब तक इस कार्य में स्त्रियाँ पूरी तरह से सहयोग नहीं करती तब तक स्वराज्य की आशा रखना व्यर्थ है। स्त्रियाँ जितनी सूक्ष्मता से ऐसी बातों का पालन करती हैं उतनी सूक्ष्मता से पुरूष नहीं करते। यदि स्त्रियाँ इस बात को नहीं समझती कि राष्ट[a] की स्वतंत्रता को बनाये रखना तथा उसे प्राप्त करना उनका धर्म है तब तक देश की उन्नति संभव नहीं। यदि स्त्रियाँ यह माने कि देव दर्शन में ही सम्पूर्ण धर्म का समावेश हो जाता है, तो धारणा अंधविश्वास का स्वरूप धारण कर लेती है और इसके परिणामस्वरूप राष्ट[a] का नुकसान होता है। देव–दर्शन आत्मज्ञान का एक साधन है, इस बात को जानने वाली स्त्री यह समझ जायगी कि राष्ट[a] की स्वतंत्रता की ध्वनि मंदिर में भी गुंजित होनी चाहिए, क्योंकि स्वतंत्रता के बिना धर्म की रक्षा करना असम्भव है।'[22]

अमृतसर में 18 अप्रैल 1919 को जब जनरल डायर का कहर सर पर था उस समय लोग धर्म की कितनी रक्षा कर सके थे? उस वक्त भी स्त्रियाँ मंदिरों में जाती थीं, थोडे बहुत पुरूष भी जाते थे। परन्तु मन्दिरों में जाने का क्या फल निकला? यदि स्त्रियाँ यह जानती होती कि जनरल डायक के अत्याचार से मुक्ति प्राप्त करना जनता का सर्वोपरि कर्त्तव्य है तो वे अपने पंतियों तथा पुत्रों को शूरता का पाठ पढ़ाती तथा उन्हें भीरूता का परित्याग करके स्वाभिमान की रक्षा करने के

लिए सिखलाती। लेकिन ऐसी बातें नहीं हुई। प्राचीन काल में सीताजी ने राम के साथ वनगमन किया। उनसे रामचन्द्र के काम बिलकुल छिपे हुए नहीं थे। द्रौपदी पाण्डवों की सहचरी बनी उसने जगत के सम्मुख यह बात सिद्ध कर दी कि वह आत्मबल से रक्षा करने में समर्थ है।'[23]

गाँधी जी वैसी शिक्षा पर विशेष बल देते रहे जो व्यावहारिक या प्रयोगिक हो। इस तरह की शिक्षा में एकाग्रता बनी रहती है तथा बच्चे ज्ञानार्जन के साथ–साथ अर्थोपार्जन का भी उपाय सीख जाते हे। स्त्रियाँ कुछ कलात्मक काम पुरूषों से अधिक भी कर सकती हैं। चित्रकला, कताई आदि कलात्मक तथा सामाजिक काम स्त्रियाँ विशेष रूप से कर सकती हैं। यदि पुरूष उसमें अधिक नहीं पड़े, तो स्त्रियाँ स्वावलम्बी बन सकती है।

गाँधी जी के विचार में प्राथमिक पाठशालाएँ स्त्रियों के हाथ में ही रहनी चाहिए। उनमें लड़के और लड़कियाँ साथ पढ़ें। अगर सारा प्राथमिक शिक्षण स्त्रियों के हाथ में रहेगा, तो बच्चों का विकास, ठीक–ठीक होगा। समाज को मर्यादा में रखने की शक्ति भी स्त्रियों में आयगी। बच्चों की तालीम का काम आज पुरूषों के हाथ में है। वस्तुतः पुरूषों में बच्चों को तालीम देने लायक कोई अक्ल नहीं दीखती। बड़े होने पर भले ही पुरूष तालीम दे सके, परन्तु प्राइमरी स्कूल में बच्चो के साथ कैसा व्यवहार किया जाय, यह पुरूष क्या जाने? 'वह सारा का सारा क्षेत्र स्त्रियों के हाथ को मिलना चाहिए। इस तरह वे काम भी करेंगी तथा उनका जीविकोपार्जन भी होगा। कई अन्य कार्य भी शिक्षित महिलाओं के जीविकोपार्जनार्थ है जिसे वे अपना सकती है।'[24]

स्त्रियों को वे सारे क्षेत्र हाथ में लेने चाहिए, जो सांस्कृतिक माने जाते हैं। आज तक इन क्षेत्रों में प्रकट रूप में ज्यादातर पुरूषों का हाथ रहा है, अप्रकट रूप से स्त्रियों का हाथ रहा है। दुनिया के महान् काव्य जिनका दुनिया पर असर है, चाहे वाल्मीकि रामायण है, व्यास का महाभारत हो, होमर, दाँते, मिल्टन आदि के काव्य हों, सब के सब पुरूषों ने लिखे हैं। वेद में थोड़ी स्त्रियों भी ऋषि हैं, जिन्होंने मंत्र निर्माण किये है। फिर बीच में कर्नाटक की अक्का महादेवी, राजस्थान की मीराबाई आदि दो–चार नाम आते हैं। परन्तु कुल साहित्य पर स्त्रियों का ज्यादा असर नहीं रहा है। अभी युरोप में कुछ स्त्रियाँ लिखने लगी है। यह उनका सामाजिक कार्य माना जाता है। 'भारत में भी अब स्त्रियाँ जागरूक हो रही हैं। कई प्राईवेट स्कूल ऐसे हैं जहाँ शिक्षण का कार्य केवल महिलाएँ ही कर रही है। अब महिलाओं के लिए कॉलेज भी खुल गये हैं। जहाँ शिक्षक केवल महिलाएँ होती हैं। इस प्रकार सांस्कृतिक विकास में भी महिलाएँ अब योगदान दे रही हैं।'[25]
चवर्ती रा0 गो0 चारी के अनुसार – 'विद्यार्थियों का चरित्र निर्माण नैतिक शिक्षा से सम्भव है और उसी के आधार पर राष्ट का विकास हो सकता है। महात्मा गाँधी ने अपने व्यक्तिगत जीवन में नैतिकता पर बहुत जोर दिया था। उनकी दृष्टि में यह उन्नति की पहली सीढ़ी और आत्मानुभूति का राजपथ है। उन्होंने इसे इतनी प्रधानता दी है कि उसे धर्मव से मिला दिये।'[26] गाँधी जी के मत में जिस वस्तु से हमारे मन में अच्छे विचार उठते हैं, वह हमारी नीति सदाचार का ही फल है। नीति के मार्ग से ही हम यह जान सकते हैं कि दुनिया कैसी होनी चाहिए 'यदि हमें सम्पूर्ण बनना है तो नीति के अनुसार चलना चाहिए चाहे इसके लिए कितने ही कष्ट क्यों न उठाने पड़े। इस पर यदि विफलता भी मिले तो उसमें नीति का दोष नहीं हैं, क्योंकि विफलता नीति की अपेक्षा किसी और कारणों से होती है।'[27]

गाँधी जी का इस बात में विश्वास था कि अहिंसा को सर्वोच्च और सर्वोम रूप से प्रकट न करना स्त्रियों का ईश्वर निर्मित कार्य है। पर इसके लिए एक पुरूष क्यों स्त्रियों के हृदय को आन्दोलित करें? 'संभव है उनमें से कोई स्त्री आशा से अधिक, आगे जाने में समर्थ हो सके, क्योंकि अहिंसा के पथ पर नई खोज करने तथा साहसपूर्ण कदम उठाने के लिए पुरूष की अपेक्षा स्त्री अधिक सुयोग्य है। स्त्रियों पर धर्म का प्रभुत्व अधिक है। उनमें एक प्रकार की भक्ति है।'[28] और इसीलिए बहुत सारी बातें वे बिना समझे लेती हैं। गाँधी जी इस चीज को हटाना चाहते थे और चाहते थे 'कि उनमें केवल आध्यात्मिक शक्ति ही विकसित हो। आज धर्म में ऐसी कितनी बातें है, जो मनुष्य को पकड़ कर बाँध लेती है। उससे मुक्त होना चाहिए। राजनीति, सेना और धर्म तीन चीजों से मुक्त होकर स्त्रियाँ आगे आयेंगी तो वे भारत को जीत सकेंगी और समाज रचना पर असर डाल सकेंगी।'[29]

गाँधी जी ने धर्म शब्द का इस्तेमाल विविध सम्प्रदाय के अर्थ में किया। मैं हिन्दू हूँ, तुम मुस्लिम हो। हिन्दू में भी मैं ब्राह्मण हूँ, तुम शुद्र हो। तो धर्म के नाम पर हम मानव अलग–अलग पड़ जाते हैं। ईश्वर कभी यह नहीं चाहते कि हम अलग हों। ईश्वर तो एक हैं। अनन्त हैं। ईश्वर के पास अपनी चिा–शुद्धि के अलावा और किसी भी चीज की प्रार्थना नहीं होनी चाहिए, परन्तु हम कामनाग्रस्त हैं और भगवान को अलग–अलग नाम देकर उन कामनाओं की पूर्ति के लिए प्रार्थना करते हैं। ईश्वर का नाम लेकर हम देवताओं की उपासना करते हैं। हे लक्ष्मी देवी मेरी अमुक माँग पूरी करो–तो ये सारी देवताओं उपासना है। यह ईश्वर भक्ति नहीं। यह सच्ची धार्मिकता भी नहीं। ऐसे धर्म का गाँधी जी ने निषेध किया क्योंकि यह मानव से मानव के बीच दीवार बनकर आता हैं उन्हे आध्यात्मिक होना चाहिए।'[30]

अहिंसा की नींव पर रचे गये जीवन की योजना में जितना और जैसा अधिकार पुरूष को अपने भविष्य की रचना का है, उतना और वैसा ही अधिकार स्त्री को भी अपना भविष्य तय करने का है। लेकिन अहिंसक समाज को व्यवस्था में जो अधिकार मिलते हैं, वे किसी न किसी कर्तव्य या धर्म के पालन से प्राप्त होते हैं। इसलिए यह भी मानना चाहिए कि सामाजिक आचार व्यवहार के नियम स्त्री और पुरूष दोनों आपस में मिलकर और राजी–खुशी से तय करें। इन नियमों का पालन करने के लिए बाहर की किसी साा या हुकूमत की जबर्दस्ती काम न देगी। स्त्रियों के साथ अपने व्यवहार और बर्ताव में पुरूषों ने इस सत्य को पूरी तरह पहचाना नहीं है। स्त्री को अपना मित्र या साथी मानने के बदले पुरूष ने अपने को उसका स्वामी माना है।

संदर्भ – सूची :

1. 'सोशल वेलफेयर इन इण्डिया', अम्मू मेमन मजुमदार, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई, 1964, पृष्ठ 98
2. वही
3. 'ऑल इण्डिया वीमेंस एजुकेशन', रजत मजुमदार, ऑक्सफोर्ड प्रेस, बम्बई, 1937, पृष्ठ 450
4. 'ए सेन्चुरी ऑफ रिफार्म इन इण्डिया', एस नटराजन, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई 1959, पृष्ठ 68
5. वही
6. वही, पृष्ठ 142
7. वही, पृष्ठ 750
8. 'सोशल वेलफेयर इन इण्डिया', अम्मू मेमन मजुमदार, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई, 1964, पृष्ठ 96
9. 'दि प्रोग्रेस ऑफ विमेन', एच0 ग्रे, रामा प्रकाशन, इंदौर, 1941, पृष्ठ 132
10. वही, पृष्ठ 207
11. 'गाँधी संस्मरण और विचार', मोरार जी देसाई, सस्ता साहित्य मंडल, दिल्ली, 1965, पृष्ठ 352
12. वही, पृष्ठ 353
13. वही
14. 'विमेन एंड सोशल इनजस्टिस', एम0 के0 गाँधी, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1970, पृष्ठ 10
15. वही, पृष्ठ 69
16. 'दि मैसेज ऑफ महात्मा गाँधी', मोहन राव, एशिया पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई, 1967, पृष्ठ 95
17. वही
18. 'गाँधी संस्मरण और विचार', मोरार जी देसाई, सस्ता साहित्य मंडल, दिल्ली, 1965, पृष्ठ 357
19. वही

20. वही, पृष्ठ 183
21. वही, पृष्ठ 141
22. वही, पृष्ठ 164
23. वही
24. 'स्त्री–शक्ति', विनोवा भावे, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, 1944, पृष्ठ 90
25. 'नैतिक शिक्षा तथा भारतीय संस्कृति पर गाँधी जी के विचार, ईश्वर दत्त शील, सिद्धांत प्रकाशन, नई दिल्ली, 1949, पृष्ठ 65
26. वही, पृष्ठ 22
27. वही, पृष्ठ 23
28. वही, पृष्ठ 95
29. 'नारी की महिमा', विनोबा भावे, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, 1982, पृष्ठ 133
30. वही